P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4* December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

दफ्तरी जीवन का यथार्थ : यारों के यार

सुमन कुमारी बरनवाल
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
विश्व भारती शान्ति निकेतन,
पश्चिम बर्द्धमान

सारांश

समकालीन महिला लेखन में कृष्णा सोबती बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कथा कार है। उनके कृतित्व में उनके व्यक्तित्व की झलक मिलती है। कृष्णा जी का कथा–साहित्य स्त्री के अलावा आम आदमी के वास्तविक जीवन के अंतर्विरोधों, अंतद्वंदो और विसंगतियों को बखूबी उभरता है। यथार्थ को नपे–तुले मँजे हुए शब्दों में कलात्मक प्रस्तुति के साथ अभिव्यंजित करने में माहिर कृष्णा सोबती का उपन्यास 'यारों के यार' अपने रचनात्मक शिखर पर है।

मुख्य शब्द : दफ्तर, भ्रष्टाचार, नैतिकता, स्वतंत्रता, आधुनिकता,पूंजीवाद।

प्रस्तावना

उपन्यास में सरकारी दफ्तर के हेड क्लर्क 'भवानी बाबू ,हजारा सिंह प्यारा सिंह' फाइल में होते हुए घोटाले में अपना नाम जुड़ा पाकर उहापोह में रहते हैं। दफ्तर में हुए घोटाले और इन्क्वायरी से भवानी बाबू भाई आक्रांत हो जाते हैं। पुत्र मुन्नन का सिर फटने व काल कलवित हो जाने पर दुखों का पहाड़ भवानी बाबू को हिला कर रख देता है। यह दुखद सूचना पाते ही वह अधीर होते हैं तथा दफ्तर के सभी सहकर्मी उनका हौसला आफजाही करते हैं किंतु उन सबके बॉस इस दुखद ,मायूसी भरे माहौल से बचते हुए निकल जाते हैं – ''सूरी शर्मा और भारद्वाज बरामदे में पीछे–पीछे चले आते थे कि साहब अपने कमरे से निकले और इस मातमी जुलूस को नजर अंदाज कर सीधे अपनी कार की ओर बढ़ गए।''[1]

पूंजीपतियों, उद्योगपतियों ,अधिकारियों की मानसिकता और चरित्र में अनैतिकता के अवैधता के साथ दो मुँहापन भरपूर मात्रा में उपलब्ध होता है जिसे कृष्णा जी ने अपने इस उपन्यास का विषय वस्तु बनाया है। दफ्तर में बॉस के साथ कार्यरत कर्मचारियों का छत्तीस का आंकड़ा रहता है। उपन्यास में सूरी कहता है –'' चूतियां साला किस्तों की कार में लट्टू बना घूमता है, बहनचोद ! किसी दिन हराम का चूना झड़ने पर आ गया तो सारी चिनाई धरी रह जाएगी।''[2] भयाक्रांत और चिंता मग्न भवानी बाबू, पुत्र मुन्नन के मृत्यु के दूसरे दिन भी सारी संवेदना से परे दिल पर पत्थर रखकर दफ्तर जाते हैं किंतु सहकर्मियों में यह भी आलोचना का विषय बन जाता है –''क्या कयाम–मिजाज पाया है – कल बेटा गया और आज हजरत हाजिर जाहिर ! पूछिए साहब, छुट्टी कर लेने से क्या कुर्सी लूटी जाती थी।''[3] आधुनिक प्रतिस्पर्धा,भ्रष्टाचार अनैतिकता आदि ने समाज को मानवीय संवेदना से च्युत कर दिया है। भ्रष्टाचार अनैतिकता,घोटालों ने मानव को इस कदर जकड़ा है कि मानव प्रतिक्षण घुटता–पिसता जीने को बाध्य है।

उपन्यास में सरकारी दफ्तर का माहौल हंसी–मजाक, खींचातानी से लबरेज है। इसमें समाज,धर्म जाति,व्यक्तिगत जीवन चरित्र की यथार्थता को प्रस्तुत करने की यथासंभव चेष्टा की गई है। साथ ही यह भी प्रदर्शित किया गया है कि चाहे बड़े अफसर हो या अदना सा कर्मचारी, सारे एक ही थाली के चट्टे– बट्टे हैं। सूरी कहता है –''यारो कोई बादाम खाए या मूंगफली, गू की बू नहीं बदलती.....अड्डा नहीं लूच्चई का मदरसा है।''[4] समसामयिक परिप्रेक्ष्य में सरकारी नौकरी में कामचोरी, आलस्य ने अपना पैर पसार रखा है। सरकारी दफ्तर और कर्मचारियों ने कृत्रिमता का जामा पहन रखा है। उपन्यास में स्त्री का वक्तव्य सरकारी कर्मचारियों की पोल खोल कर रख देता है –''साले,मां के ढेंढवे, न काम, न धंधा। सरकारी पंखों के तले बैठ टके– टके के नगीने जड़ते रहते हैं।''[5] सरकारी नौकरी, काम–काज आदि में खुफिया विभाग की भूमिका अदा करने वालों में चालू एजेंटों का भी अग्रणी स्थान है। पर इन चालू एजेंटों का सहयोग भी एक सीमा तक आबद्ध रहता है –''सरताज का मतलब भाँप भवानी बाबू भी गौर से सरताज बहादुर की ओर देखते रहे ,मानो कहते हो, यह बाप दादा का इल्म दोस्त –सिर्फ लिफाफिया आंकड़ों के जोर से इसे हाथियाया नहीं जा सकता।''[6]

'यारों के यार' उपन्यास में हंसी– मजाक, खींचा–तानी, अश्लील वार्तालाप के अंतर्गत स्त्री की स्थिति को भी रेखांकित किया गया है–''जो जनाना हर रोज मैले–कुचले कपड़ों में सौदाई बनी, चीनी–चपड़ और चूल्हे–चौके में लगी रहे, मर्द को रिझाने के नाम पर बीमारी का पचरा ले बैठे तो बता यार, उसको प्यारेलाल अम्मा नहीं तो क्या मुजरे की कमचीन माने।''[7] इस उपन्यास में सरकारी दफ्तर में उत्सव आयोजित करने के लिए तरह–तरह के कार्यक्रम मनाए जाते हैं, लेकिन मनोरंजन के लिए खानपान, तमाम सजावट के अलावा स्त्रियों को पैसे के माध्यम से बुलाया जाता है। शिक्षित समाज में भी आज स्त्री को देह तक सीमित रख्खा जाता है –'' तमन्ना के पास कोई वक्त नहीं हजरत, रिश्वतपूरी की कोई सस्ती लड़की तलाश करो।''[8] वाकई स्त्री आज भी मन और तन को खुश रखने वाली वस्तु प्रसाधन है जिसे वह जब चाहा उस रूप में उसका प्रयोग कर फेक देता है।

बाजारवादी व्यवस्था का आईना है ''यारों के यार'' उपन्यास। वर्तमान दौर में व्यक्ति की गुणवत्ता को परे रख अव्वल दर्जे की चापलूसी महत्वपूर्ण है। उपन्यास में इस सच को बखूबी उभारा गया है –''फूफूँदी के–तरक्की आजकल काबिलियत से नहीं, मुँहचुमाई और पाँवघिसाई से मिलती है।''[9] कामकाजी जीवन को रिश्वत द्वारा पल्लवित होना आज के समय में आम बात है। सरकारी कामकाज, दफ्तर, कोर्ट, कचहरी, स्कूल, कॉलेज आदि स्थानों पर झूठ और फरेब का बोल बाला है। सच सौ पर्दो के पीछे कैद कर दिया जाता है और झूठ, फरेब को बातों की चाशनी में डुबोकर पेश किया जाता है। साथ ही ईमानदारी के स्थान पर बेईमानी, रिश्वत के बूते पर ही आज का समय– समाज में चल रहा है तथा काले धन के द्वारा संपन्न हो रहा है –''आजकल जो उठता है रिश्वत के खमीर से नंबर दो का पैसा जोड़ खानदानी अमीर बन फिरता है।''[10]

उदारीकरण के दौर में सरकारी नौकरी होने के बावजूद भी व्यक्ति के समक्ष आर्थिक विपन्नता मुँह बाये खड़ी है। कारण मँहगाई और आवश्यकताओं ने आम –आदमी की कमर तोड कर रख दी है। कहने को तो एक सरकारी ओहदे पर कार्यरत व्यक्ति संपन्न जीवन जीता है लेकिन अपनी जरुरतों और स्टेटस के मेंटेनेंस में वह बिक–सा जाता है –''दोस्त, लंगेपा है तो हम कम तनख्वाह पाने वालों को, जिनकी दो टांगे भी एक के बराबर समझो। पैसे दिए, दूध–राशन के तो एक टांग गई–फीस दी बच्चों की तो दूसरे भी नकारा।''[11] बाजारीकरण के समय में जहां सारी वस्तुओं का क्रय –विक्रय अनिवार्य है वही सरकारी तनख्वाह भी परिवार के भरण–पोषण में कम पड़ जाती है अतः मध्य वर्गीय आदमी का आर्थिक तंगी में जीना मुहाल है।

यह उपन्यास सरकारी कर्मचारियों के दुख–दर्द, व्यथा, पीड़ा को अभिव्यक्त तो बारीकी के साथ करता है साथ दफ्तर के माहौल में व्यक्ति की हंसी–मजाक, खींचा–तानी में अपनी पीड़ा भूल साजाता है। सरकारी कर्मचारी संवाद, वाद–विवाद के लिए अश्लील,फूहड शब्दों का प्रयोग कर दफ्तरी माहौल के भारीपन को हल्का करने का प्रयास करता है लेकिन इन कर्मचारियों में कुछ लोग अपने व्यक्तित्व और शिष्टता को बचाए रखने के लिए इस हँसी–मजाक से कतराते भी है–''काहे का हेड बाबू! हेड–यतीम है, जहां सच कहने–सुनने का मौका आया पकड़ा लोटा और चल दिए टट्टी फिरने।''[12]

दफ्तर में फैले भ्रष्टाचार, षडयंत्र का पर्दाफाश पूर्णतः यह उपन्यास करता है। साथ ही इस यथार्थता को प्रदर्शित करता है कि सरकारी कर्मचारियों, क्लर्कों के कंधे पर बंदूक रखकर चलाने का गुर बड़े अफसर, अधिकारियों को खूब आता है। लेकिन इसमें क्लर्क और कर्मचारी फँस जाते हैं तथा अफसर, अधिकारी साफ पाक दामन बचाकर निकल लेते हैं –''सच तो यह है हिसाब बाबू कि हममें से हर एक चूतिया है और हर एक उल्लू का पट्ठा है। यूं तो हम से भी बड़े उल्लू के पट्ठे मौजूद हैं जो हरामजादी में उन गुरु घंटालों के भी बाप है जो फोकट की चुस्कियां खिलाकर खलकत के महबूब बने फिरते हैं।''[13]

अध्ययन का उद्देश्य

हिंदी उपन्यासों की परंपरा में कृष्णा सोबती एक ऐसा नाम है जो अपने साथ जीवन के तमाम अनुभव को एक फलक में समेटने का सार्थक प्रयास है। कृष्णा सोबती का रचना संसार अल्प है, पर वह विशिष्ट है। इनकी सारी रचनाएं समाज सापेक्ष होते हुए भी साहित्य और समाज में एक घटना के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उनकी रचनाएं भावनात्मक और कलात्मक नजरिए से प्रबुद्ध पाठकों का एक नया वर्ग तैयार करती चलती है। दरअसल इनकी रचना संसार की गहरी सघन ऐन्द्रियता, तराश और लेखकीय अस्मिता ने एक बडे वर्ग को अपनी और आकृष्ट किया है। निश्चय ही अपने समकालीन और आगे की पीढ़ियों को मानवीय स्वतंत्रता और नैतिक उन्मुक्तता के लिए प्रेरित किया है। 'यारों के यार' उपन्यास में सरकारी दफ्तर, वहां के परिवेश तथा वहां कार्यरत व्यक्तियों के क्रिया–कलाप को लेखिका ने संजीदगी से उठाया है। कृष्णा जी ने इस उपन्यास में न केवल दफ्तरी परिदृश्य को पेश किया है बल्कि समसामयिक परिप्रेक्ष्य में भ्रष्टाचार, नैतिकता,गंदी राजनीति को भी उजागर किया गया है और कहीं न कहीं मानव आज इसे अपना संस्कार व स्वभाव बना लिया है। उपन्यास इस सत्य को उद्घाटित करता है जो इस आलेख का मूल उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन

कृष्णा सोबती समकालीन महिला लेखन में विशेष पद की अधिकारी रही है। अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने भूमंडलीकरण,बाजारीकरण और उदारीकरण के प्रभाव को 'यारों के यार' उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कृष्णा जी को केंद्र में रखकर तो कई शोध हुए होंगे पर 'परिवार–विघटन और यारों के यार' पर अब तक (2018) कोई शोध–प्रबंध हमारी जानकारी में उपलब्ध नहीं हुआ है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण ने जहां पूरे विश्वग्राम को अपनी गिरफ्त में लिया है वहीं सरकारी दफ्तर के कर्मचारी, क्लर्क भी इस जकड़न से स्वतंत्र नहीं है। आज के दौर में बाजारीकरण

ने अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अंतर्विरोधों, अंतर्द्वंदों, विसंगतियों को बढ़ावा दिया है जिसके फलस्वरूप मानव को मानव न मानकर अपना प्रतिद्वंदी मानने की मानसिकता आज सर्वोपरि है। आज मानवीय गुणों का ह्रास हुआ है और मानव–समाज संवेदनहीनता की खाई की ओर अग्रसर हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 13*
2. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 13*
3. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ –19*
4. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 21*
5. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 28*
6. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 35*
7. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ –36*
8. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ –41*
9. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 46*
10. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ –48*
11. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ – 67*
12. *सोबती कृष्णा , यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, 2010 , पृ –68*
13. *सोबती कृष्णा , यारों के यार , राजकमल प्रकाशन, 2010 ,पृ –71*